भारत का संघ

बनाम

एच.सी.गोयल

30 अगस्त, 1963

(पी.बी. गजेंद्रगढ़कर, के. सुब्बा राव, के.एन. वांचू, एन. राजगोपाल अयंगर और जे.आर. मुधोलकर, जे.जे.)

सिविल सेवा-अनुशासनात्मक कार्यवाही-पूछताछ-जांच अधिकारी द्वारा प्रस्ताव, यदि सरकार पर बाध्यकारी है-बिना किसी सबूत के बर्खास्तगी का आदेश-सरकार सदभावी रूप से कार्य कर रही है-हस्तक्षेप करने के लिए उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र-भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 और 311 (1) और (2)-सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम। आर. 55 .

एक शिकायत पर अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के खिलाफ विभागीय जांच करने का फैसला किया, उसे निलंबित कर दिया और उसे कारण बताने के लिए एक नोटिस दिया कि निम्नलिखित आरोपों पर अनुशासनात्मक कार्रवाई क्यों नहीं की जानी चाहिए।

(i) बिना आवश्यक आज्ञा के उप निदेशक, प्रशासन, सी.पी.डब्लयू.डी. से उनके आवास पर मिलना।

(ii) उप-निदेशक के बच्चों के लिए कलकत्ता से मिठाई नहीं लाने पर स्वेच्छा से खेद व्यक्त करना,

(iii) उप-निदेशक श्री राजगोपालन को वरिष्ठता के संबंध में अपने प्रतिनिधित्व का समर्थन करने के इरादे से रिश्वत के रूप में एक मुद्रा नोट का प्रस्ताव रखना जो आकार और रंग से सौ रुपये का नोट प्रतीत होता है।

(iv) सी. सी. बी. के नियम 3 का उल्लंघन। (आचरण नियम)। प्रत्यर्थी ने अपना स्पष्टीकरण दिया और पूछताछ में आरोप साबित नहीं हुए।अपीलार्थी ने जाँच रिपोर्ट पर विचार किया और प्रावधिक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रतिवादी को बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए और उसके खिलाफ दूसरा नोटिस जारी किया।प्रत्यर्थी ने इस नोटिस पर अपना स्पष्टीकरण दिया। इस स्तर पर उनका मामला संघ लोक सेवा आयोग को भेजा गया।आयोग ने अपीलार्थी को सलाह दी कि प्रतिवादी पर कोई भी दंड नहीं लगाया जा सकता है। अपीलार्थी ने मामले पर नए सिरे से विचार किया और इसे फिर से पुनर्विचार करने के लिए आयोग को वापस भेज दिया। कॉम मिशन ने मामले की फिर से जांच करने पर अपने पहले के विचारों पर संसक्त रहे और अपने विचारों को प्रेषित किये। अपीलार्थी ने

पूरे मामले पर फिर से विचार किया और प्रत्यर्थी को सेवा से बर्खास्त कर दिया। इसके बाद प्रत्यर्थी ने अनुच्छेद 226 एवं 311 के तहत बर्खास्तगी के उक्त आदेश को रदद करने के लिये एक रिट याचिका दायर की। याचिका को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील को प्राथमिकता दी।अपील को स्वीकार कर लिया गया और उनकी बर्खास्तगी आदेश को खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय में विचार के लिए कानून के दो प्रश्न उत्पन्न हुए -

(1) क्या सरकार जांच अधिकारी जिसे विभागीय जांच रखने का काम सौंपा गया है, द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों से अलग करने में सक्षम है।आर के तहत एक अपराधी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ पूछताछ। 55 सिविल सेवा नियम और (2) क्या उच्च न्यायालय किसी सरकारी अधिकारी द्वारा दायर रिट याचिका पर विचार कर रहा है जिसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है, वह यह मानने का हकदार है कि उसके दुराचार के संबंध में सरकार द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है। अपीलार्थी ने मुख्य रूप से तर्क दिया कि यदि वह ईमानदारी से काम करता है, तो उच्च न्यायालय अपने निष्कर्षों में

हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा, हालांकि उच्च न्यायालय महसूस कर सकता है कि उक्त निष्कर्ष किसी भी सबूत पर आधारित नहीं हैं।

माना गया कि सिद्धांत रूप में, एन द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में से कोई भी नहीं पूछताछ अधिकारी, और न ही उनकी सिफारिशें सरकार पर बाध्यकारी हैं और इसलिए, द्वारा प्रदत्त संवैधानिक सुरक्षा अनुच्छेद 311 (2) के तहत यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी ने इसका उल्लंघन किया है।

भारत के राज्य सचिव बनाम आई. एम. लाल, [1945] एफ. सी. आर. 103 , भारत के लिए उच्चायुक्त और उच्चायुक्त पाकिस्तान बनाम 1. एम. लाल, 75 आई. ए. 225, खेम चंद बनाम भारत संघ, [1958] एस. सी. आर. 1080, असम राज्य बनाम बिमल कुमार पंडित, [1964] 2. एस. सी. आर. 1 और ए. एन. डी. सिल्वा बनाम। भारत संघ, [1962] एसयूपीआर 1 एस. सी. आर. 968, संदर्भित

लोक सेवकों जिन्हें बर्खास्त किया गया है या अन्यथा व्यवहार किया गया है जिससे कि अनुच्छेद 311 (2) आहूत किया गया है उनके द्वारा दायर रिट याचिका से निपटान के लिये उच्च न्यायालय के पास अनुच्छेद 226 के तहत यह जांच करने का क्षेत्राधिकार है कि सरकार द्वारा

बर्खास्तगी का विवादित आदेश पर निष्कर्ष दिया गया है, वह साक्ष्य से समर्थित नहीं है।

यह नहीं माना जा सकता कि अगर दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है एवं सदभावना अपीलार्थी के पक्ष में मानी गई है तब इसके निष्कर्ष को तथ्य के प्रश्न के संबंध में सफलतापूर्वक चुनौती नहीं दी जा सकती, भले ही वह स्पष्ट है कि वह साक्ष्य से समर्थित नहीं है। वर्तमान मामले में रिपोर्ट अपीलार्थी द्वारा निष्कर्ष को समर्थित करने के लिये कोई साक्ष्य पत्रावली पर नहीं है। आरोप सं.3 प्रत्यर्थी के विरुद्ध सिद्ध किया जा चुका है।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 1962 की 645

विशेष अनुमति द्वारा अपील पंजाब उच्च न्यायाल, सर्किट बेंच दिल्ली के 1959 के पत्र पेटेंट अपील संख्या 27-डी में निर्णय और आदेश दिनांकित दिनांक 2 अगस्त, 1960 से।

भारत के अटार्नी जनरल सी.के. दफतरी और अपीलकर्ता की ओर से आर.एच. ढेबर

प्रतिवादी की ओर से एन.सी. चटर्जी, ए.एन. सिन्हा और के.के.सिन्हा

30 अगस्त, 1963

अदालत का फैसला था -

वर्तमान अपील में हमारे निर्णय के लिए कानून के दो छोटे प्रश्न उठते हैं। पहला सवाल यह है कि क्या सरकार उस जांच अधिकारी द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्षों से अलग होने में सक्षम है, जिसे सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) के नियम 55 के तहत एक अपराधी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच करने का काम सौंपा गया है। नियम ; और दूसरा सवाल यह है कि क्या सरकारी सेवा से बर्खास्त किए गए एक सरकारी अधिकारी की रिट याचिका से निपटने में उच्च न्यायालय यह मानने का हकदार है कि उसके कदाचार के संबंध में सरकार द्वारा निकाला गया निष्कर्ष किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं है। सभी। जैसा कि हमारे फैसले से पता चलेगा, हम दोनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक देने के इच्छुक हैं। इस प्रकार, अपीलकर्ता, संघभारत संघ के पहले बिंदु पर सफल होता है, लेकिन दूसरे पर विफल हो जाता है। इस अपील की सुनवाई में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल ने हमें बताया कि अपीलकर्ता इस अपील को एक परीक्षण के रूप में लड़ रहा था, प्रतिवादी के खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश को बनाए रखने के लिए इस अदालत से दो बिंदुओं पर निर्णय प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना वर्तमान अपील में इसके द्वारा उठाए गए कानून का।

(2) उपरोक्त दो बिंदु इस प्रकार उत्पन्न होते हैं। प्रतिवादी, एच.सी. गोयल, 26/11/1941 को केंद्रीय लोक निर्माण विभाग में शामिल हुए और उचित समय पर 1945-46 के आसपास उन्हें कक्षा 1 के पद पर नियुक्ति के लिए चुना गया। जनवरी, 1956 में, उन्हें कलकत्ता में वर्क्स के सर्वेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें लगा कि उनकी वरिष्ठता ठीक से तय नहीं की गई है और इसलिए, उन्होंने इस संबंध में संघ को एक अभ्यावेदन दिया था। लोक सेवा आयोग जनवरी, 1956 के मध्य में उनका दिल्ली जाना हुआ। फिर, उन्होंने 19/01/1956 को श्री आर. राजगोपालन, जो प्रशासन के उप निदेशक थे, से उनके आवास पर मुलाकात की। श्री राजा गोपालन से मिलने का उनका विचार उन्हें उनके मामले की खूबियों से परिचित कराना था। श्री राजगोपालन के साथ उनकी बातचीत के दौरान यह आरोप लगाया गया कि श्री राजगोपालन के बच्चों के लिए रसगुल्ला न ला पाने के लिए माफी मांगी जाए। इस पर, श्री राजगोपालन भड़क गए और निहित सुझाव पर अपनी नाराजगी व्यक्त की। थोड़ी देर बाद, साक्षात्कार के दौरान, यह आरोप लगाया गया कि प्रतिवादी ने अपनी जेब से एक बटुआ निकाला और उसमें से श्री राजगोपालन को एक मुड़ा हुआ सौ रुपये का नोट निकला। श्री राजगोपालन ने इस आचरण पर अपनी कड़ी अस्वीकृति व्यक्त की, जिस पर प्रतिवादी ने 'नहीं' कहा और

नोट वाला बटुआ अपनी जेब में रख लिया। कुछ मिनटों के बाद साक्षात्कार समाप्त हो गया और प्रतिवादी श्री राजगोपालन के स्थान से चला गया।

(3) इसके तुरंत बाद श्री राजगोपालन ने सी.पी.डब्ल्यू.डी. के प्रशासन निदेशक श्री अनंतकृष्णन को घटना की सूचना दी और उनके सुझाव पर लिखित रूप में एक शिकायत प्रस्तुत की गई। इस शिकायत में श्री राजगोपालन ने घटनाओं को वैसे ही सुनाया जैसे वे घटित हुईं और कहा कि साक्षात्कार के अंत में, प्रतिवादी ने उनसे पूछा कि क्या वह अपने प्रतिनिधित्व के परिणाम के बारे में जानने के लिए अगले दिन श्री राजगोपालन से फिर से मिल सकते हैं, और श्री राजगोपालन ने उन्हें बताया ताकि जब वह अगली बार दिल्ली आएं तो पूछताछ कर सकें।

(4) श्री राजगोपालन से यह शिकायत प्राप्त होने पर, अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के खिलाफ विभागीय जांच करने का फैसला किया, उसे निलंबित कर दिया और 9/02/1956 को उसे नोटिस दिया, उसके खिलाफ आरोप तय किए और उसे बुलाया। यह बताने के लिए कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई क्यों नहीं की जानी चाहिए। इस नोटिस में चार आरोप शामिल थे जो इस प्रकार थे:

(i) उप निदेशक, प्रशासन, सी.पी.डब्ल्यू.डी. से मिलना, बिना आवश्यक अनुमति के उनके आवास पर।

(ii) उपनिदेशक के बच्चों के लिए कलकत्ता से मिठाइयाँ न ला पाने पर स्वेच्छा से खेद व्यक्त करना।

(iii) उप निदेशक, श्री राजगोपालन को यूपीएससी में उनकी वरिष्ठता के संबंध में उनके प्रतिनिधित्व का समर्थन करने के लिए राजी करने के इरादे से रिश्वत के रूप में एक मुद्रा नोट की पेशकश की गई, जो आकार और रंग से सौ रुपये का नोट प्रतीत होता है ।

(iv) सीसी के नियम 3 का उल्लंघन एस. (आचरण नियम). 722 प्रतिवादी ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और मामले की जांच श्री कपूर द्वारा सिविल सेवा नियमों के नियम 55 के तहत की गई। जांच अधिकारी ने श्री राजगोपालन और प्रतिवादी की जांच की, उनके सामने पेश किए गए सबूतों पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोप संतोषजनक ढंग से साबित नहीं हुए हैं। यह रिपोर्ट जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 10/04/1956 को बनाई गई थी।

(5) अपीलकर्ता ने श्री कपूर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार किया और अनंतिम रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए, और तदनुसार 14/06/1956 को प्रतिवादी के खिलाफ दूसरा नोटिस जारी किया। इस नोटिस के जवाब में प्रतिवादी ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया.

(6) उस स्तर पर, उत्तरदाताओं का मामला संघ लोक सेवा आयोग को भेजा गया था। 30/10/1956 को बनाई गई अपनी रिपोर्ट के अनुसार, आयोग ने यह विचार किया कि पहला आरोप हटा दिया जाना चाहिए; दूसरा आरोप शायद ही अधिकारी के खिलाफ आरोप तय करने को उचित ठहराने वाला मामला था; तीसरा आरोप उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध नहीं हुआ था; और उक्त निष्कर्ष के मद्देनजर, आयोग ने सोचा कि चौथा आरोप स्वतः ही विफल हो गया। आयोग ने तदनुसार अपीलकर्ता को सलाह दी कि सिविल नियमों के नियम 49 में दिए गए किसी भी दंड को प्रतिवादी पर लगाए जाने की आवश्यकता नहीं है।

(7) अपीलकर्ता ने यूपीएससी से प्राप्त रिपोर्ट के आलोक में मामले पर नए सिरे से विचार किया, लेकिन चूंकि उसने उस निष्कर्ष का पालन किया जिस पर वह प्रतिवादी के खिलाफ दूसरा नोटिस जारी करने से पहले अनंतिम रूप से पहुंचा था, इसलिए उसने आयोग से इस पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया। मामला और दिनांक 8/12/1956 को उक्त मामला उसे भेज दिया गया। आयोग ने मामले की दोबारा जांच करने पर, अपने पहले के विचारों का पालन किया और अपीलकर्ता को 15/01/1957 को इसकी जानकारी दे दी। अपीलकर्ता ने पूरे मामले पर फिर से विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रतिवादी के खिलाफ उसकी बर्खास्तगी के

लिए मामला स्थापित किया गया था, और इसलिए 13/03/1957 को पारित आदेश द्वारा उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

(8) इसके बाद प्रतिवादी ने संविधान के अनुच्छेद 226 और 311 के तहत बर्खास्तगी के उक्त आदेश को रद्द करने के लिए अपनी रिट याचिका संख्या 201-डी 1957 द्वारा पंजाब उच्च न्यायालय का रुख किया। उक्त उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले की सुनवाई की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रतिवादी ने उसके खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने का कोई मामला नहीं बनाया है। इसके बाद प्रतिवादी ने लेटर्स पेटेंट के तहत अपील की और उक्त उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने लेटर्स पेटेंट अपील की सुनवाई करते हुए उत्तरदाताओं की अपील की अनुमति दे दी। यह माना गया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जांच अधिकारी ने प्रतिवादी के पक्ष में एक रिपोर्ट बनाई थी। अपीलकर्ता के लिए अपने निष्कर्षों से अलग होना संभव नहीं था और चूंकि अपीलकर्ता ने अपने निष्कर्ष के परिणामस्वरूप बर्खास्तगी का आदेश पारित किया था कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष गलत थे, उक्त आदेश ने संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों का उल्लंघन किया। इस तरह प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिका को अनुमति दी गई और उसकी बर्खास्तगी को रद्द कर दिया गया। इसके बाद अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में प्रमाण पत्र के

लिए आवेदन किया लेकिन उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया। इसके बाद अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति के लिए इस अदालत का रुख किया और इस अदालत द्वारा दी गई विशेष अनुमति के साथ ही वह वर्तमान अपील हमारे सामने लेकर आया है।

(9) पहला प्रश्न जो हमारे निर्णय की मांग करता है वह यह है कि क्या अपीलकर्ता प्रतिवादी के खिलाफ पेश किए गए सबूतों पर एक अलग दृष्टिकोण अपनाने और इस आधार पर आगे बढ़ने में सक्षम था कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष निराधार और गलत थे। . यदि यह माना जाता है कि अपीलकर्ता को जांच अधिकारी के निष्कर्षों से अलग होने से रोका गया था, तो, निश्चित रूप से, अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए बाद के कदम संविधान के अनुच्छेद 311 के विरुद्ध होंगे। दूसरी ओर, यदि जांच अधिकारी के निष्कर्षों से अलग होने की अपीलकर्ता की क्षमता पर गंभीरता से सवाल नहीं उठाया जा सकता है, तो यह तर्क कि अपीलकर्ता प्रतिवादी के विरूद्ध दूसरा नोटिस जारी किया तो अनुच्छेद 311 का उल्लंघन किया है, वह सफल नहीं हो सकता।

(10) अनुच्छेद 311 में दो उप-अनुच्छेद शामिल हैं और उनका प्रभाव अब संदेह में नहीं है। अनुच्छेद 311 में निहित संवैधानिक प्रावधान द्वारा लोक सेवकों को उनकी बर्खास्तगी, निष्कासन या रैंक में कमी के मामले में

प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों के बारे में इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर जांच की गई है। यह अब अच्छी तरह से तय हो गया है कि एक लोक सेवक जो अनुच्छेद 311 के संरक्षण का हकदार है, को अपना बचाव करने के लिए दो अवसर अवश्य मिलने चाहिए। विभागीय जांच शुरू होने से पहले उसे उस आरोप की स्पष्ट सूचना होनी चाहिए जिसके लिए उसे बुलाया गया है, और ऐसा नोटिस मिलने के बाद और उसे अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर दिए जाने के बाद, जांच नियमों के अनुसार और लगातार की जानी चाहिए। प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताएँ. पूछताछ के अंत में, जांच अधिकारी सबूतों की सराहना करता है, अपने निष्कर्ष रिकॉर्ड करता है और अपनी रिपोर्ट संबंधित सरकार को सौंपता है। यह जांच का पहला चरण है, और यह चरण वैध रूप से तभी शुरू हो सकता है जब दोषी लोक सेवक पर आरोप लगाया गया हो।

(11) सरकार को रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, सरकार दोषी लोक सेवक के खिलाफ रिपोर्ट और सबूतों पर विचार करने की हकदार है। सरकार रिपोर्ट से सहमत हो सकती है या रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों से पूरी तरह या आंशिक रूप से भिन्न हो सकती है। यदि रिपोर्ट लोक सेवक के पक्ष में निष्कर्ष निकालती है, और सरकार उक्त निष्कर्षों से सहमत है, तो और कुछ नहीं किया जाना बाकी है, और लोक सेवक जिसे निलंबित कर दिया गया

है, वह बहाली और परिणामी राहत का हकदार है। यदि रिपोर्ट लोक सेवक के पक्ष में निष्कर्ष निकालती है और सरकार उक्त निष्कर्षों से असहमत है और मानती है कि लोक सेवक के खिलाफ लगाए गए आरोप प्रथम दृष्टया सिद्ध हैं, सरकार को अनंतिम रूप से निर्णय लेना चाहिए कि लोक सेवक पर क्या दंड लगाया जाना चाहिए और उस संबंध में उसके खिलाफ दूसरा नोटिस जारी करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। यदि जांच अधिकारी निष्कर्ष निकालता है, जिनमें से कुछ लोक सेवक के पक्ष में हैं और कुछ उसके खिलाफ हैं, तो सरकार पूरे मामले पर विचार करने की हकदार है और यदि वह मानती है कि लोक सेवक के खिलाफ कुछ या सभी आरोप तय किए गए हैं। राय, प्रथम दृष्टया उसके खिलाफ स्थापित हो, तो सरकार को यह भी अनंतिम रूप से तय करना होगा कि लोक सेवक को क्या सजा दी जानी चाहिए और तदनुसार उसे नोटिस देना होगा। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि दूसरे नोटिस का उद्देश्य लोक सेवक को दोनों मामलों में सरकार को संतुष्ट करने में सक्षम बनाना है, एक तो यह कि वह अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों में निर्दोष है और दूसरा यह कि भले ही उसके खिलाफ आरोप सिद्ध हो जाएं, फिर भी उसे दी जाने वाली प्रस्तावित सजा अनुचित रूप से गंभीर है। अनुच्छेद 311 काफी हद तक उस स्थिति के समान है जो धारा 240 भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत लोक सेवकों को नियंत्रित करती है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 240, साथ

ही अनुच्छेद 311 का दायरा और प्रभाव कई अवसरों पर न्यायिक निर्णयों द्वारा विचार किया गया है, इस बिंदु पर विस्तार से विचार करना अनावश्यक है। भारत के राज्य सचिव बनाम आईएम लाल

(1), भारत के लिए उच्चायुक्त और पाकिस्तान के लिए उच्चायुक्त आईएम लाल

(2) ; और खेमचंद बनाम भारत संघ एवं अन्य

(12) इन रिपोर्ट किए गए निर्णयों से पता चलता है कि यह कभी भी सुझाव नहीं दिया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष मामले को समाप्त करते हैं और सरकार जो जांच अधिकारियों की नियुक्ति करती है और जांच का निर्देश देती है, वह उक्त निष्कर्षों से बंधी है और उसे इस पर कार्रवाई करनी चाहिए। इस आधार पर कि उक्त निष्कर्ष अंतिम हैं और इन्हें दोबारा नहीं खोला जा सकता। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने माना है कि आईएम लाल (1) के मामले में संघीय अदालत द्वारा और खेमचंद (3) के मामले में इस अदालत द्वारा की गई कुछ टिप्पणियाँ हैं जो उत्तरदाताओं के इस तर्क का समर्थन करती हैं कि अपीलकर्ता वर्तमान जांच कार्यवाही में जांच अधिकारी द्वारा अपने पक्ष में दर्ज किए गए निष्कर्षों से बंधा हुआ है, इन टिप्पणियों का उल्लेख करने से पहले, सिद्धांत पर इस विवाद की जांच करना प्रासंगिक है। यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी

अपीलकर्ता के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिवादी के खिलाफ जांच करता है। वास्तव में यही वह चरित्र है जो जांच अधिकारी अनिवार्य रूप से तब धारण करता है जब वह सरकार के आदेश पर कोई विभागीय जांच करता है। जांच का उद्देश्य स्पष्ट है. यह सरकार को एक अपराधी लोक सेवक के खिलाफ लगाए गए आरोपों की जांच करने में सक्षम बनाने के लिए है, ताकि सरकार उचित समय पर दिए गए सबूतों पर विचार कर सके और यह तय कर सके कि उक्त आरोप साबित हुए हैं या नहीं। विधिवत नियुक्त जांच अधिकारी द्वारा की गई जांच में हस्तक्षेप से वास्तविक कानूनी स्थिति में कोई बदलाव नहीं होता है कि आरोप सरकार द्वारा तय किए गए हैं और यह सरकार है जिसे दोषी लोक सेवक पर सजा देने का अधिकार है। इसलिए, सिद्धांत रूप में यह देखा जाना कठिन है कि प्रतिवादी किस प्रकार यह तर्क उठाने हेतु जायज है कि जांच अधिकारी द्वारा की गई जांच के बिंदु अपीलार्थी को बाध्य करती है।

(13) यदि प्रतिवादी द्वारा उठाए गए विवाद को बरकरार रखा जाता, तो इससे अतार्किक और लगभग शानदार परिणाम सामने आते। यदि जांच अधिकारी लोक सेवक के खिलाफ निष्कर्ष निकालता है, तो उत्तरदाताओं के तर्क पर सरकार कभी भी मामले की दोबारा जांच नहीं कर सकती है, इसलिए भले ही सरकार संतुष्ट हो कि लोक सेवक के खिलाफ निष्कर्ष गलत

थे, उसे इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए लोक सेवक दोषी है और उसे कुछ दंड दिया जाए। यह स्पष्ट है कि यह प्रस्ताव अपीलकर्ता के संवैधानिक अधिकारों के साथ पूरी तरह से असंगत है, जो नियुक्ति प्राधिकारी है और जिसके पास प्रतिवादी पर दंड लगाने की शक्ति है।

(14) इसी तरह, यदि जांच अधिकारी प्रतिवादी के मामले में लोक सेवक के पक्ष में निष्कर्ष निकालता है, जो अंतिम है और उक्त निष्कर्ष कितना भी अतार्किक, गलत या निराधार क्यों न हो, अपीलकर्ता शक्तिहीन है और उसे इस आधार पर कार्य करना चाहिए कि लोक सेवक निर्दोष है. यह फिर से एक बहुत ही विसंगतिपूर्ण स्थिति है और यह अपीलकर्ता के वास्तविक संवैधानिक अधिकारों और जांच अधिकारी के चरित्र और उसकी जांच के दायरे की अनदेखी करती है।

(15) कभी-कभी, कई आरोप तय किए जाते हैं और उनके संबंध में जांच अधिकारी द्वारा निष्कर्ष दर्ज किए जाते हैं। ऐसे मामलों में, सरकार कुछ निष्कर्षों को स्वीकार कर सकती है और कुछ को अस्वीकार कर सकती है, और स्वाभाविक रूप से उसे अपने निष्कर्षों के आलोक में अगला कदम उठाना होगा। असम राज्य और अन्य बनाम बिमल कुमार पंडित(1) में इस अदालत के समक्ष ऐसा मामला सामने आया। ऐसे मामले में दूसरे नोटिस को पूरा करने वाली आवश्यकताओं से निपटते हुए, इस अदालत ने

माना है कि उक्त नोटिस में लोक सेवक को उन आधारों को स्पष्ट रूप से इंगित करना चाहिए जिन पर सरकार अस्थायी रूप से नोटिस में निर्दिष्ट प्रस्तावित दंड लगाने का इरादा रखती है।

(16) इसके अलावा, यह स्पष्ट होगा कि यदि उत्तरदाताओं का तर्क वैध है, तो दूसरा नोटिस बहुत कम उद्देश्य पूरा करेगा। यदि, उस स्तर पर, सरकार जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार करने के लिए बाध्य है, तो लोक सेवक को न केवल प्रस्तावित सजा के खिलाफ कारण बताने का अवसर दिया जाना चाहिए, बल्कि उसके खिलाफ दर्ज निष्कर्षों के खिलाफ, पराजित किया जाएगा, क्योंकि उत्तरदाताओं के मामले में सरकार उक्त निष्कर्षों को नहीं बदल सकती है। हमारी राय में, प्रतिवादी द्वारा उठाया गया विवाद स्पष्ट रूप से निराधार है और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।

(17) इस संबंध में, हम यह जोड़ सकते हैं कि जब तक वैधानिक नियम या विशिष्ट आदेश जिसके तहत किसी अधिकारी को जांच करने के लिए नियुक्त किया जाता है, तब तक जांच अधिकारी को उस पर लगाए जाने वाले दंड के बारे में कोई सिफारिश करने की आवश्यकता नहीं है। यदि अपराधी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप जांच में साबित हो जाते हैं; हालाँकि, यदि जाँच अधिकारी कोई सिफ़ारिश करता है, तो उक्त

सिफ़ारिशें, जैसे कि गुण-दोष के आधार पर उसके निष्कर्ष, का उद्देश्य केवल सरकार के विचार के लिए उचित सामग्री प्रदान करना है। एएन डिसिल्वा बनाम भारत संघ (1) के मामले में न तो निष्कर्ष, न ही सिफारिशें सरकार पर बाध्यकारी हैं।

(18) आइए अब संक्षेप में विचार करें कि क्या प्रतिवादी का मामला जिन टिप्पणियों पर निर्भर करता है, वे उसके तर्क को उचित ठहराते हैं। भारत के राज्य सचिव बनाम आईएम लाल(2) स्पेंस सी.जे. मामले में धारा 240(3) भारत सरकार अधिनियम, 1935 के प्रावधानों की जांच की। और देखा कि उक्त उपधारा उन सभी मामलों में शामिल है 'जहां कोई जांच होती है और उसके परिणामस्वरूप कुछ प्राधिकारी निश्चित रूप से बर्खास्तगी, या रैंक में कमी का प्रस्ताव करते हैं, संबंधित व्यक्ति को उस जांच के परिणामों और निष्कर्षों को पूर्ण रूप से, या पर्याप्त रूप से संक्षेप में बताया जाएगा। जांच अधिकारी को यह बताने का अवसर दिया जाए कि उसे प्रस्तावित बर्खास्तगी या कमी क्यों नहीं झेलनी चाहिए। श्री चटर्जी का सुझाव है कि इन टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि यह केवल जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के आधार पर है। दूसरा नोटिस जारी किया जा सकता है. हमारी राय में, यह तर्क पूरी तरह से ग़लत है। आईएम लाल के मामले में, निष्कर्ष उनके खिलाफ थे और यह उक्त निष्कर्षों के संदर्भ में है कि

स्पेंस सी.जे. द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार किया जाना चाहिए। यदि निष्कर्ष लोक सेवक के विरुद्ध हैं, और सरकार साक्ष्यों पर विचार करने पर उक्त निष्कर्ष को अनंतिम रूप से स्वीकार करती है, तो यह कहना सही होगा कि उक्त निष्कर्ष पर लोक सेवक को दूसरा नोटिस दिया जाता है, और इसलिए, उसे उक्त निष्कर्षों की प्रकृति के बारे में एक स्पष्ट विचार दिया। बेशक, इसका मतलब यह नहीं है कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष बाध्यकारी हैं और मामले को वस्तुतः समाप्त कर देते हैं।

(19) एसआर दास सी.जे. द्वारा की गई टिप्पणियों के बारे में भी यही टिप्पणी की जानी है। खेम चंद(1) के मामले में अपने निष्कर्षों को सारांशित करते हुए, विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि एक लोक सेवक जिस दूसरे अवसर का हकदार है, वह केवल तभी प्रभावी हो सकता है जब `सक्षम प्राधिकारी जांच समाप्त होने के बाद और गंभीरता या अन्यथा के बारे में अपना दिमाग लगाने के बाद सरकारी कर्मचारी के खिलाफ साबित हुए आरोप, अस्थायी रूप से तीन दंडों में से एक देने का प्रस्ताव करते हैं और सरकारी कर्मचारी को इसकी सूचना देते हैं।` यह स्पष्ट है कि जब विद्वान मुख्य न्यायाधीश सरकारी कर्मचारी के खिलाफ साबित हुए आरोपों का उल्लेख करते हैं, तो उनका इरादा ऐसा नहीं होता है। सुझाव दिया जाए कि जांच अधिकारी द्वारा इस संबंध में दिए गए

निष्कर्ष अंतिम हैं। दर्ज किए गए सबूतों के साथ जांच रिपोर्ट वह सामग्री बनती है जिस पर सरकार को अंततः कार्रवाई करनी होती है। सक्षम अधिकारी द्वारा की गई जांच और उक्त जांच के परिणामस्वरूप वह जो रिपोर्ट बनाता है उसका एकमात्र उद्देश्य यही है। इसलिए, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की कि अपीलकर्ता का जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से अलग होना उचित नहीं था। जैसा कि हमने अभी संकेत दिया है, यदि यह माना जाता है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट सरकार पर बाध्यकारी नहीं है, तो कला द्वारा प्रदान की गई संवैधानिक सुरक्षा। यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता द्वारा अनुच्छेद 311(1) और (2) का उल्लंघन किया गया है और प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में की गई शिकायत विफल होनी चाहिए। हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती कर गया कि अपीलकर्ता का जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से अलग होना उचित नहीं था। जैसा कि हमने अभी संकेत दिया है, यदि यह माना जाता है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट सरकार पर बाध्यकारी नहीं है, तो कला द्वारा प्रदान की गई संवैधानिक सुरक्षा। यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता द्वारा अनुच्छेद 311(1) और (2) का उल्लंघन किया गया है और प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में की गई शिकायत विफल होनी चाहिए। हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि

उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती कर गया कि अपीलकर्ता का जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से अलग होना उचित नहीं था। जैसा कि हमने अभी संकेत दिया है, यदि यह माना जाता है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट सरकार पर बाध्यकारी नहीं है, तो अनुच्छेद 311 द्वारा प्रदान की गई संवैधानिक सुरक्षा अपीलकर्ता द्वारा उल्लंघन नहीं किया गया है और प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में की गई शिकायत विफल होनी चाहिए।

(20) यह निष्कर्ष अंततः अपील का निपटान नहीं करता है। यह अभी भी विचार किया जाना बाकी है कि क्या प्रतिवादी सही नहीं है जब वह यह तर्क देता है कि इस मामले की परिस्थितियों में, सरकार का निष्कर्ष किसी भी सबूत पर आधारित नहीं है। यह एक ऐसा निष्कर्ष है जो विकृत है और इसलिए, रिकॉर्ड के सामने ऐसी स्पष्ट और स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है कि उच्च न्यायालय द्वारा इसे रद्द करना उचित होगा। लोक सेवकों द्वारा दायर रिट याचिकाओं से निपटने में, जिन्हें खारिज कर दिया गया है, या अन्यथा निपटाया गया है ताकि अनुच्छेद 311(2) को आकर्षित किया जा सके। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के पास यह जांच करने का अधिकार क्षेत्र है कि क्या सरकार का निष्कर्ष, जिस पर बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश निर्भर करता है, किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है। यह सच है कि कदाचार का दोषी पाए गए सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जो

बर्खास्तगी का आदेश पारित किया जा सकता है, उसे प्रशासनिक आदेश के रूप में वर्णित किया जा सकता है; फिर भी, वैधानिक नियमों के तहत ऐसे लोक सेवक के खिलाफ की गई कार्यवाही यह निर्धारित करने के लिए कि क्या वह अपने खिलाफ लगाए गए आरोप का दोषी है, अर्धन्यायिक कार्यवाही की प्रकृति में है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उदाहरण के लिए, सर्टिओरीरी की रिट हो सकती है। एक लोक सेवक द्वारा दावा किया गया है यदि वह उच्च न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उक्त कार्यवाही में सरकार का अंतिम निष्कर्ष जो उसकी बर्खास्तगी का आधार है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। वास्तव में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल के प्रति निष्पक्षता में, हमें यह जोड़ना चाहिए कि उन्होंने कानून में इस स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया। वैधानिक नियमों के तहत ऐसे लोक सेवक के खिलाफ की गई कार्यवाही यह निर्धारित करने के लिए कि क्या वह अपने खिलाफ लगाए गए आरोप का दोषी है, अर्धन्यायिक कार्यवाही की प्रकृति में है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उदाहरण के लिए, सर्टिओरारी की रिट पर दावा किया जा सकता है। एक लोक सेवक यदि वह उच्च न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उक्त कार्यवाही में सरकार का अंतिम निष्कर्ष जो उसकी बर्खास्तगी का आधार है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। वास्तव में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल के प्रति निष्पक्षता में, हमें यह जोड़ना चाहिए कि उन्होंने कानून में इस

स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया। वैधानिक नियमों के तहत ऐसे लोक सेवक के खिलाफ की गई कार्यवाही यह निर्धारित करने के लिए कि क्या वह अपने खिलाफ लगाए गए आरोप का दोषी है, अर्धन्यायिक कार्यवाही की प्रकृति में है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उदाहरण के लिए, सर्टिओरारी की रिट पर दावा किया जा सकता है। एक लोक सेवक यदि वह उच्च न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उक्त कार्यवाही में सरकार का अंतिम निष्कर्ष जो उसकी बर्खास्तगी का आधार है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। वास्तव में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल के प्रति निष्पक्षता में, हमें यह जोड़ना चाहिए कि उन्होंने कानून में इस स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया। एक लोक सेवक द्वारा दावा किया जा सकता है यदि वह उच्च न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उक्त कार्यवाही में सरकार का अंतिम निष्कर्ष जो उसकी बर्खास्तगी का आधार है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। वास्तव में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल के प्रति निष्पक्षता में, हमें यह जोड़ना चाहिए कि उन्होंने कानून में इस स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया। एक लोक सेवक द्वारा दावा किया जा सकता है यदि वह उच्च न्यायालय को संतुष्ट करने में सक्षम है कि उक्त कार्यवाही में सरकार का अंतिम निष्कर्ष जो उसकी बर्खास्तगी का आधार है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। वास्तव में, विद्वान अटॉर्नी-जनरल के

प्रति निष्पक्षता में, हमें यह जोड़ना चाहिए कि उन्होंने कानून में इस स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया।

(21) हालांकि, उन्होंने यह तर्क देने का प्रयास किया कि यदि अपीलकर्ता ने ईमानदारी से काम किया, तो उच्च न्यायालय को उसके निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा, हालांकि उच्च न्यायालय को लग सकता है कि उक्त निष्कर्ष बिना किसी सबूत के आधारित है। उनका तर्क था कि जिन मामलों में निष्कर्ष निकलते हैं। बिना किसी सबूत के सरकार तक पहुंच गए, क्या डॉट को कानूनन दुर्भावना के मामलों से अलग किया जा सकता है; और इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि तथ्य के विकृत निष्कर्षों पर केवल इस आधार पर हमला किया जा सकता है कि, वे दुर्भावनापूर्ण हैं, और चूंकि वर्तमान मामले में दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया था, इसलिए यह प्रतिवादी के लिए यह तर्क देने के लिए खुला नहीं था कि यह दृष्टिकोण अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए कदम को रिट कार्यवाही में ठीक किया जा सकता है।

(22) हम इस तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। सत्ता के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग पर इस आधार पर स्वतंत्र रूप से हमला किया जा सकता है कि यह दुर्भावनापूर्ण है। शक्ति का ऐसा प्रयोग हमेशा मुख्य आधार पर खारिज किया जा सकता है कि यह शक्ति का प्रामाणिक प्रयोग नहीं है।

लेकिन हम यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि यदि दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है और अपीलकर्ता के पक्ष में सद्भावना मान ली गई है, तो तथ्य के सवाल पर इसके निष्कर्ष को सफलतापूर्वक चुनौती नहीं दी जा सकती है, भले ही यह स्पष्ट हो कि इसका समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है। दोनों कमज़ोरियाँ अलग-अलग और अलग-अलग हैं, हालाँकि, कुछ मामलों में, दोनों मौजूद हो सकते हैं। ऐसे 47 मामले हो सकते हैं जिनमें कोई सबूत नहीं है, भले ही सरकार नेकनीयती से काम कर रही हो; उक्त दुर्बलता वहां भी हो सकती है जहां सरकार दुर्भावना से काम कर रही हो और उस स्थिति में, सरकार का निष्कर्ष जो किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, दुर्भावना का परिणाम हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यदि यह साबित हो जाता है कि सरकार के निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है, तो प्रमाणन रिट जारी नहीं की जाएगी। दुर्भावना का प्रमाण. इसीलिए हम विद्वान अटॉर्नी-जनरल के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि चूंकि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ कोई दुर्भावनापूर्ण आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए प्रतिवादी के पक्ष में कोई सर्टिफिकेट जारी नहीं किया जा सकता है।

(23) यह हमें उत्तरदाताओं के तर्क की योग्यता पर ले जाता है कि अपीलकर्ता का निष्कर्ष कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाया गया तीसरा आरोप साबित हो गया है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। विद्वान अटॉर्नी-जनरल ने हमारे सामने इस बात पर जोर दिया है कि इस प्रश्न से निपटने में, हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि अपीलकर्ता भ्रष्टाचार को जड़ से खत्म करने के दृढ़ संकल्प के साथ कार्य कर रहा है, और इसलिए, यदि यह दिखाया जाता है कि उसने जो दृष्टिकोण अपनाया है अपीलकर्ता का एक उचित संभावित दृष्टिकोण है, इस अदालत को उस फैसले पर अपील नहीं करनी चाहिए और यह तय करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि क्या इस अदालत ने भी वही विचार रखा होगा या नहीं। निःसंदेह यह विवाद बिल्कुल सही है। एकमात्र परीक्षण जिसे हम उत्तरदाताओं के मामले के इस हिस्से से निपटने में वैध रूप से लागू कर सकते हैं, वह है, क्या कोई सबूत है जिसके आधार पर प्रतिवादी के खिलाफ यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उसके खिलाफ आरोप संख्या 3 साबित हुआ था? अनुच्छेद 226 के तहत एेसी याचिका पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय किसी विशेष निष्कर्ष के समर्थन में साक्ष्य की पर्याप्तता या पर्याप्तता के प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है। यह एक ऐसा मामला है जो उस प्राधिकारी की क्षमता के अंतर्गत है जिसने इस प्रश्न पर विचार किया है; लेकिन उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है

और अवश्य करना चाहिए कि क्या विवादित निष्कर्ष के समर्थन में कोई सबूत है। दूसरे शब्दों में, यदि जांच में दिए गए सभी साक्ष्यों को सत्य मान लिया जाए, तो क्या यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नगत आरोप प्रतिवादी के खिलाफ साबित हो गया है? यह दृष्टिकोण साक्ष्य को तौलने से बचाएगा। यह सबूतों को उसी रूप में लेगा जैसे वह मौजूद है और केवल यह जांच करेगा कि क्या उस सबूत पर कानूनी रूप से विवादित निष्कर्ष का पालन होता है या नहीं। इस परीक्षण को लागू करते हुए, हम यह मानने के इच्छुक हैं कि उत्तरदाताओं की शिकायत अच्छी तरह से आधारित है क्योंकि, हमारी राय में, अपीलकर्ता के प्रतिवादी को खारिज करने के आदेश में जो निष्कर्ष निहित है कि आरोप संख्या 3 उसके खिलाफ साबित हुआ है, वह बिना किसी सबूत पर आधारित है।

(24) इस संकीर्ण बिंदु से संबंधित तथ्य बहुत कम हैं। प्रतिवादी ने श्री राजगोपालन से खेद व्यक्त किया कि वह अपने बच्चों के लिए रसगुल्ला नहीं लाए हैं। इस बात पर कुछ विवाद है कि क्या यह बयान प्रतिवादी ने श्री राजगोपालन के साथ अपने साक्षात्कार की शुरुआत में दि`या था या उसके अंत में। श्री राजगोपालन द्वारा की गई शिकायत से पता चलता है कि साक्षात्कार उत्तरदाताओं की खेद व्यक्त करने के साथ शुरू हुआ कि वह श्री राजगोपालन के बच्चों के लिए मिठाइयाँ नहीं लाए थे। श्री राजगोपालन

ने अपने साक्ष्य में कहा कि यह बयान प्रतिवादी द्वारा साक्षात्कार के अंत में दिया गया था। एक तथ्य स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने खेद व्यक्त किया कि वह श्री राजगोपालन के यहाँ मिठाइयाँ नहीं ले गया था। यदि उत्तरदाताओं के कथन पर विश्वास किया जाए कि उन्होंने साक्षात्कार की शुरुआत में ऐसा कहा था, विशेष रूप से जब यह श्री राजगोपालन द्वारा की गई शिकायत द्वारा समर्थित है, तो यह दिखा सकता है कि प्रतिवादी की उक्त टिप्पणी को सुनने पर श्री राजगोपालन द्वारा व्यक्त की गई कड़ी अस्वीकृति ने उनके लिए एक चेतावनी के रूप में काम किया होगा। हालाँकि, यह एक और मामला है।

(25) फिर, सौ रुपये के नोट के संबंध में, जो श्री राजगोपालन के अनुसार, प्रतिवादी द्वारा अपने बटुए से निकाला गया था, श्री राजगोपालन ने स्वीकार किया है कि उक्त नोट दो बार मुड़ा हुआ था। उनका कहना है कि ध्यान दें कि इसका रंग नीला था और इसका आकार सामान्य दस रुपये या पांच रुपये के नोट से बड़ा था. श्री राजगोपालन, जो एक सीधे-सादे अधिकारी प्रतीत होते हैं, ने बहुत ही ईमानदार तरीके से अपनी गवाही दी। उन्होंने जांच अधिकारी को स्पष्ट रूप से बताया कि यह नहीं कहा जा सकता है कि सौ रुपये का नोट, जिसे उन्होंने सोचा था कि प्रतिवादी ने उनके बटुए से निकाला था, प्रतिवादी द्वारा उन्हें पेश किया गया था, लेकिन

उन्होंने सोचा कि पूरी बात को संदर्भ में देखा जाना चाहिए मामले का. उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उनकी आंखों की रोशनी सही नहीं थी।

(26) दूसरी ओर, प्रतिवादी ने सुझाव दिया कि श्री राजगोपालन ने उनसे जो प्रश्न पूछे थे, उनके उत्तर में उन्होंने अपनी नियुक्ति का पत्र जानने के लिए अपनी जेब से कुछ कागजात निकाले, और जैसे ही श्री राजगोपालन सामने आए उसे हतोत्साहित करने के लिए उसने उक्त कागज अपनी जेब में रख लिया।

(27) अब, सबूतों की इस स्थिति में, यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने श्री राजगोपालन को रिश्वत की पेशकश करने का भी प्रयास किया था। श्री राजगोपालन ने एक निश्चित बयान दिया कि प्रतिवादी ने उन्हें रिश्वत की पेशकश नहीं की। वह केवल इस तथ्य का उल्लेख करता है कि प्रतिवादी ने अपने बटुए से एक कागज निकाला और उक्त कागज उसे दो बार मुड़े हुए सौ रुपये के नोट जैसा दिखाई दिया। निस्संदेह, श्री राजगोपालन को उत्तरदाताओं के आचरण पर संदेह था, और इसलिए, उन्होंने तुरंत एक रिपोर्ट बनाई। लेकिन श्री राजगोपालन द्वारा उठाए गए संदेह को, कानूनन, प्रतिवादी के खिलाफ सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता है, हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि श्री राजगोपालन एक सीधे और ईमानदार अधिकारी हैं। यद्यपि हम सार्वजनिक सेवा से भ्रष्टाचार को

जड़ से खत्म करने के लिए अपीलकर्ता की चिंता की पूरी तरह से सराहना करते हैं, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि उक्त उद्देश्य को पूरा करने में, घरेलू पूछताछ में भी केवल संदेह को सबूत की जगह लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ऐसा हो सकता है कि अदालतों में आपराधिक मुकदमों को नियंत्रित करने वाले तकनीकी नियम आवश्यक रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू न हों, लेकिन फिर भी, यह सिद्धांत कि दोषी को दंडित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्दोषों को दंडित न किया जाए, उतना ही नियमित पर भी लागू होता है वैधानिक नियमों के तहत अनुशासनात्मक जांच के संबंध में आपराधिक मुकदमे। हमने वर्तमान जांच में दिए गए सबूतों पर बहुत सावधानी से विचार किया है और विद्वान अटॉर्नी-जनरल द्वारा की गई दलील को ध्यान में रखा है, लेकिन हम इसे रिकॉर्ड पर रखने में असमर्थ हैं, कोई भी सबूत है जो अपीलकर्ता के निष्कर्ष को कायम रख सकता है। प्रतिवादी के विरूद्ध आरोप संख्या 3 सिद्ध हुआ है। इसी संबंध में एवं मात्र संयोगवश यह जोड़ना सुसंगत होगा की यूपीएससी ने मामले पर दो बार विचार किया और इस दृढ़ निर्णय पर पहुंचे कि प्रतिवादी के खिलाफ मुख्य आरोप स्थापित नहीं हुआ है।

(28) परिणाम यह है कि यद्यपि अपीलकर्ता अपील में उठाए गए कानून के सिद्धांत बिंदु पर सफल होता है, लेकिन अपील विफल हो जाती है, क्योंकि गुण-दोष के आधार पर, हम मानते हैं कि प्रतिवादी को दंडित करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था।

अपीलार्थी खर्चा अदा करेगा।

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मर्यादा शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।